Vol.8 August 2014 No.2
Annual Subscription : Rs 100
Rs. 10/- per copy

ब्रह्मार्पण
BRAHMARPAN

वेदोऽखिलो धर्ममूलम्

A Monthly publication of Brahmasha India Vedic Research Foundation

Brahmasha India Vedic Research Foundation
ब्रह्माशा इंडिया वैदिक रिसर्च फाउन्डेशन

अमर रहे यह दिवस महान

(स्वतन्त्रता दिवस पर)

–राधे याम 'आर्य' विद्यावाचस्पति

अमर हीदों के ोणित का,
प्रतिफल है यह पावन पर्व,
इसकी गौरव गरिमा पर है,
हर भारतवासी को गर्व,

बिस्मिल–भगत–सुभाष सद ा ने,
इसके हित में प्राण लुटाया।
स्वतंत्रता की बलिदेवी पर,
निज प्राणों का अर्ध्य चढ़ाया।

आज राष्ट्र की स्वतंत्रता पर,
संकट के घन छाए हैं।
उग्रवाद–आतंकवाद के,
बादल नभ में छाए हैं।

राजनीति के ुचि प्रांगण से,
स्वार्थों का हो पूर्ण निवारण।
जन–जन में फिर से हो अविरल,
राष्ट्रभक्ति का फिर संचारण।

स्वतंत्रता संग्राम समय की,
प्रखर दे ाभक्ति हो जागत।
डट जाएँ कर्तव्य पथों पर,
युवक हमारे अब अप्रतिहत।

आजादी के महासमर में–
दिया सपूतों ने बलिदान।
अमर रहे यह दिवस महान।।

दिया दे ा के लाखों युवकों–
ने तन–मन–धन सब कुछ दान।
अमर रहे यह दिवस महान।।

आओ! लें संकल्प पुनः हम–
देंगे स्वतंत्रता हित प्राण।
अमर रहे यह दिवस महान।।

बढ़े धरा पर भारत माँ की–
निष्ठा तथा प्रतिष्ठा ाान।
अमर रहे यह दिवस महान।।

ध्वज तिरंगा लहराए नभ में–
गूँजे भारत का जय गान।
अमर रहे यह दिवस महान।।

मुसाफिरखाना, सुल्तानपुर
(उ०प्र०)

श्रावणी एवं कृष्णजन्माष्टमी के शुभ अवसर पर
ब्रह्मार्पण के पाठकों को हार्दिक शुभकामनाएँ

BRAHMASHA INDIA VEDIC RESEARCH FOUNDATION

C2A/58, Janakpuri,
New Delhi-110058
Tel :- 25525128, 9313749812
*email:*deeukhal@yahoo.co.uk
brahmasha@gmail.com

Sh. B.D. Ukhul
Secretary
Dr. B.B. Vidyalankar
President
Col.(Dr.) Dalmir Singh (Retd.)
V.President
Dr. Mahendra Gupta
V.President
Ms. Deepti Malhotra
Treasurer

Editorial Board
Dr. Bharat Bhushan Vidyalankar, Editor
Dr. Harish Chandra
Dr. Mahendra Gupta
Acharya Gyaneshwararya

लेख में प्रकट किए विचारों के लिए सम्पादक उत्तरदायी नहीं है किसी भी विवाद की परिस्थिति में न्याय क्षेत्र दिल्ली ही होगा।

Printed & Published by
B.D. Ukhul for Brahmasha India Vedic Research Foundation
Under D.C.P.
License No. F2 (B-39) Press/ 2007
R.N.I. Reg. No. DELBIL/ 2007/22062
Price : Rs. 10.00 per copy
Annual Subscription : Rs. 100.00

Brahmarpan August 2014 Vol. 8 No.2
श्रावण-भाद्रपद 2070 वि.संवत्

ब्रह्मार्पण
BRAHMARPAN

A bilingual Publication of Brahmasha India Vedic Research Foundation

CONTENTS

1. अमर रहे, यह दिवस महान 2
-राधे याम 'आर्य' विद्यावाचस्पति
2. संपादकीय 4
3. सांख्य द र्ान 7
4. संस्कृतः जननी अपनी हिन्दी की 8
-प्रियवीर हेमाइना
5. स्वाध्याय का पर्व है श्रावणी
-डॉ. भवानी लाल भारतीय 9
6. श्रीकृष्ण की राजनीति और वर्तमान उग्रवाद 13
-डॉ. अ ोक आर्य
7. श्रीकृष्ण के दो रूप 16
-वीरेन्द्र
8. संस्कृत सदियों से दे ा की सांस्कृतिक एकता की भाषा 18
-प्रो. चन्द्रप्रका ा आर्य
9. अपनी विरासत समझने के लिए संस्कृत जानना जरूरी 23
-सत्यव्रत ाास्त्री
10. राष्ट्र का विकास गुरुकुल ि ाक्षा से ही सम्भव 26
-प्रो. विजयेन्द्र स्नातक
11. Are Upanishads Still Relevant? 31
-Sneha Kothawade
11. Krishna Speaks On Knowledge and Action 34
-G. S. Tripathi

संपादकीय

क्या िरडी के साईंबाबा भगवान् हैं?

आजकल धार्मिक क्षेत्र में एक नया विवाद उठ खड़ा हुआ है। ांकराचार्य स्वामी स्वरूपानंद का कहना है कि दे ा में बड़ी संख्या में लोग िरडी के साईं बाबा को भगवान मानकर पूजा करते हैं। यहाँ तक कि मंदिरों में भी पुजारी सनातन धर्म द्वारा स्वीकृत भगवान की मूर्तियों के साथ साईं बाबा की भी मूर्ति रखने लगे हैं। भक्तों को क्या चाहिए, वे उसके समक्ष भी माथा टेकने लगते हैं। इससे लोग सनातन धर्म से विमुख होने लगे हैं। उनका यह भी कहना है कि जो साईं बाबा को भगवान मानकर पूजा करते हैं, उनकी मुक्ति नहीं होती और उनकी इस पूजा का उलटा फल मिलता है। उनका विचार है कि साईं बाबा की पूजा करने वाले भ्रमित और पथभ्रष्ट हो गए हैं। हिन्दू धर्म की व्यवस्था वेदों और ाास्त्रों के अनुसार है। वहाँ साईं बाबा जैसे सन्तों का कोई स्थान नहीं है। इसके अतिरिक्त साईंभक्त वेदमंत्रों में मिलावट करके उन्हें भ्रष्ट कर रहे हैं।

प्र न उठता है कि हिन्दू धर्म में ऐसे अनेक देवी-देवताओं की और मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम तथा योगे वर श्रीकृष्ण जैसे महापुरुषों की पूजा होती रही है और उन्हें भगवान के रूप में मान्यता दी जाती रही है। आजतक ये ांकराचार्य किस निद्रा में थे जो अब उन्हें सुध आई है। वेदों के अनुसार सत्य स्वरूप ई वर एक ही है विद्वान् लोग उसका कथन अनेक प्रकार से करते हैं, मंत्र है-

"एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति। (ऋक्. 1/64/66)

इसी प्रकार यजुर्वेद में उल्लेख है कि वेदों में जिस परमे वर की महिमा का वर्णन है उसकी कोई प्रतिमा, मूर्ति आदि नही है, मंत्र है-

"न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद् य ाः।"

(यजु. 32/3)

जब उसकी मूर्ति ही नहीं है तो मूर्तिपूजा का क्या औचित्य है? वेदों से उद्धत इन मंत्रों से स्पष्ट होता है कि ई वर एक ही है चाहे उसे किसी भी नाम से पुकारें। इस संबंध में ई वर के विभिन्न नामों को नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है जो परमे वर के सर्वव्यापक स्वरूप को बताते हैं।

ई वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्व ाक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वे वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सष्टिकर्ता आदि वि ोषताओं से युक्त है। इसी ई वर की उपासना करनी चाहिए, किसी अन्य की नहीं।

वेदों के आधार पर इस सिद्धान्त की स्थापना महर्षि दयानन्द सरस्वती ने आज से डेढ़ ाताब्दी पूर्व की थी और कुम्भ के मेले पर पाखंड खंडिनी पताका गाड़कर सनातनियों के गढ़ में इस मत की घोषणा की थी।

क्या आत्मा और परमात्मा का संबंध अं ा-अं ाी का है?

वस्तुतः ई वर, जीव (आत्मा) और प्रकृति तीन तत्वों की पथक् सत्ता है। ई वर सर्वज्ञ, सर्व ाक्तिमान और सर्वव्यापक है जबकि जीव अल्पज्ञ, अल्प ाक्ति वाला और एकदे ाी है। इन दोनों में अं ा और अं ाीभाव संभव नही है। क्योंकि जो गुण अं ाी में होते हैं उनका अं ा में भी होना स्वाभाविक है, उदाहरण के लिए हम एक बाल्टी दूध लें और उस बाल्टी में से एक गिलास दूध अलग निकाल लें। इस प्रकार हमने गिलास में जो दूध निकाला वह बाल्टी के दूध का ही अं ा है। इन दोनों पात्रों के दूध के गुण भी जाँच करने पर समान पाए जाएँगे। इस दष्टि से विचार करें तो सर्वव्यापक परमात्मा और जीव के गुणों को देखें तो हम पाते हैं कि परमात्मा और जीवात्मा के गुणों में भिन्नता है। जैसा ऊपर बताया गया कि

परमात्मा सर्वज्ञ है परन्तु जीव अल्पज्ञ है, परमात्मा सर्व क्तिमान है तो जीव अल्प क्ति वाला है; परमात्मा सर्वव्यापक है जबकि जीव एकदे ी हैं। इसके अतिरिक्त जीवात्माओं में इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख-दुःख और ज्ञान आदि गुण पाए जाते हैं। ये गुण सभी प्राणियों में समान हैं। परन्तु परमात्मा के जिन गुणों का ऊपर उल्लेख किया है वे जीवात्मा से भिन्न हैं। इससे स्पष्ट है कि आत्मा और परमात्मा का संबंध अं ा-अं ी का नहीं है। परमात्मा सष्टिकर्ता है और वह जीवों के कर्मफल की व्यवस्था करता है। जीव भोक्ता है। वह अपने द्वारा किए हुए ुभा ुभ कर्मों के फल भोगता है। अतः अपने कर्मों के भोग के लिए उसे जन्म-जन्मान्तर में ारीर धारण करना पड़ता है। इसके विपरीत परमात्मा एक है। वह न कभी पैदा होता है न मरता है। वह सष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय करता है और सब स्थितियों में एकरस रहता है।

मनुष्य अपनी अल्पज्ञता और अज्ञान के कारण ई वर के वास्तविक स्वरूप को न जानने के कारण मनुष्यों में श्रेष्ठता एवं महानता की दष्टि से मानव को ही ई वर मानने लगा और उनकी मूर्तियाँ बना कर पूजा करने लगा। इसी कारण से पहले जैनधर्म और बौद्धधर्म में मूर्ति पूजा का चलन हुआ। उनकी देखा-देखी हिन्दू धर्म में पूजा का प्रचलन चल पड़ा। आज मन्दिरों में न जाने किन-किन देवी-देवताओं की मूर्तियों की पूजा चल रही है। विभिन्न मत और पन्थ वाले लोग अपने महापुरुषों की महानता दिखाने के लिए उन्हें भगवान मानने लगे। इसी कारण से जितने भी पन्थ चले उतने ही भगवान हो गए। साईंबाबा भी इनमें से ही एक हैं। हमें इस विषय में विचार करके एकमात्र जगत् के स्वामी, सष्टिकर्ता, सबके पालनहार परमपिता परमात्मा की स्तुति, प्रार्थना और उपासना करनी चाहिए, अन्य की नहीं।

संपादक

सांख्य द र्शन (अध्याय-1, सूत्र-80)

-डॉ. भारत भूषण विद्यालंकार

इससे पूर्व सूत्र में सूत्रकार ने जिस पक्ष की स्थापना की है उसकी सिद्धि के लिए आगे चार हेतुओं को प्रस्तुत किया है, सूत्र है-

उपादाननियमात्।।80।।

अर्थ- (उपादान नियमात्) (कार्य की उत्पत्ति में उसके) उपादान कारण के होने के नियम से।

भावार्थ- हम देखते हैं कि किसी भी कार्य के उत्पन्न होने में उसके उपादान कारण की विद्यमानता का नियम होता है। किसी वि ोष कार्य की उत्पत्ति में उसके वि ाष्ट अर्थात् नियत उपादान कारण का ग्रहण होता है। चाहे जिस किसी कार्य के लिए जिस किसी भी उपादान कारण का ग्रहण नहीं किया जा सकता, जैसे- कपड़ा बनाने के लिए सूत का उपादान के रूप में ग्रहण होता है, मिट्टी आदि का नहीं। इसी तरह घड़ा बनाने के लिए उपादान के रूप में मिट्टी का ग्रहण किया जाता है अन्य सूत आदि का नहीं। इससे यह परिणाम निकलता है कि उत्पत्ति से पहले सूत में कपड़े का और मिट्टी में घड़े का अस्तित्व किसी न किसी रूप में विद्यमान रहता है। अतः स्पष्ट है कि किसी वि ाष्ट कार्य 'कपड़े' की उत्पत्ति के लिए उसके वि ाष्ट उपादान कारण 'सूत' का होना आव यक है, उसी प्रकार 'घड़े' की उत्पत्ति के लिए उसके वि ाष्ट उपादान कारण 'मिट्टी' का होना आव यक है। इससे यह स्पष्ट होता है कि चाहे जिस किसी भी कार्य की जिस किसी भी उपादान कारण से उत्पत्ति संभव नहीं है, इसलिए उत्पत्ति से पूर्व भी कार्य अपने उपादान कारण में विद्यमान रहता है। इसी सिद्धान्त को 'सत्कार्यवाद' नाम से जाना जाता है।

सी-2ए, 16/90 जनकपुरी,
नई दिल्ली-10058

संस्कृत : जननी अपनी हिन्दी की

-प्रियवीर हेमाइना

भारत माता के माथे पर
लगती जो सुन्दर बिन्दी-सी,
भाषा कौन उस संस्कृत-सम है
जननी जो अपनी हिन्दी की।

संस्कृत राष्ट्र की धरोहर है
आत्मा राष्ट्र की मनोहर है;
है यही एकता की भाषा
संस्कृत की उच्च है प्रत्या ाा।

संस्कृत-साहित्य सात्विक है
लिपि भी इसकी वैज्ञानिक है;
मूल भाषा भारत की यही
है मूर्त रूप में सर्वत्र यही।

संस्कृत साहित्य में ही वर्णित
एक ऐसा दिव्य चिन्तन है;
जो वि व के वैज्ञानिकों को
ोधार्थ देता सु-मंथन है।

अस्तु! लें सब संकल्प यही
निज अस्मिता रक्षण के लिए
"रहेंगे सतत ही यत्न ील
देववाणी-रक्षण के लिए।"

भाषा िक्षण (देववाणी संस्कृत)
राजकीय सर्वोदय कन्या विद्यालय,
बी-ब्लॉक, जनकपुरी, नई दिल्ली-58
मो. 7503070674

स्वाध्याय का पर्व है श्रावणी

-डॉ. भवानीलाल भारतीय

वर्षा काल यदि मनुष्य के मन में हर्ष और उल्लास का संचार करता है तो अति वष्टि कभी-कभी हमारी सामान्य गतिविधि ायों में बाधा भी उत्पन्न कर देती है। प्राचीन काल में नदियों में जब उफान आ जाते, जलप्लावन के कारण मार्ग अवरुद्ध हो जाते थे। तब निरन्तर भ्रमण करने वाले और जन-जन तक अपने आध्यात्मिक उपदे ा पहुँचाने वाले साधु-संन्यासी और ध ार्मिक जन वर्षा के चार महीने एक ही स्थान पर व्यतीत करते थे, इसे चातुर्मास्य कहा जाता था। वैदिक संन्यासी और जैन ध ार्म के साधु-साध्वी आज भी चौमासा की नि िचत दिनचर्या का पालन करते हैं। इस चातुर्मास्य का आरम्भ श्रावणमास की पूर्णिमा से होता था। इसे ही श्रावणी उपाकर्म का पर्व कहा जाता था। बहिनों द्वारा भाइयों की कलाइयों पर राखी बाँधने का लौकिक विधान कालान्तर में प्रचलित हुआ जब कि मौलिक रूप से श्रावणी ाास्त्रों के अध्ययन, मनन तथा उन पर आध ारित प्रवचन उपदे ा करने का ही पर्व है।

आज भी दक्षिणात्य ब्राह्मण श्रावणी पूर्णिमा के दिन निकटवर्ती जला ाय या नदी तट पर एकत्रित होते हैं। वहाँ स्नान कर यज्ञोपवीत बदलते हैं। इस अवसर पर जो मंत्र बोला जाता है उसका अभिप्राय है 'यह यज्ञोपवीत अत्यन्त पवित्र है। इसकी उत्पत्ति प्रजापति के साथ हुई है। यह तीन धागों का समन्वित यज्ञोपवीत हमें दीर्घायु, बल व तेज प्रदान करे तथा ओजस्वी बनाये।' यज्ञोपवीत के तीन धागे वस्तुतः पितऋण (माता-पिता का ऋण), आचार्य (विद्या प्रदाता गुरु का) ऋण तथा ऋषि ऋण से उऋण होने के संकल्प के प्रतीक हैं। माता-पिता और आचार्य का जो ऋण हम पर है उसे तो प्रत्यक्ष हम अनुभव करते ही हैं किन्तु पुराकालीन ऋषियों ने अपने दीर्घकालीन अध ययन, तप और चिन्तन के द्वारा जो वि ााल ाास्त्र सम्पत्ति हमारे लिए धरोहर के रूप में छोड़ी है उसे सँभालना, साथ ही उसमें वद्धि करना भी हमारा पवित्र दायित्व है।

ऋषि ऋण से उऋण होने का सर्वश्रेष्ठ उपाय है स्वाध्याय। इस

 ाब्द के दो अर्थ किये जाते हैं। प्रथम है 'स्व' का अध्ययन। इसे अंग्रेजी में Introspection कहें या अत्म निरीक्षण। स्वाध्याय का अन्य अर्थ है जीवन को उन्नत बनाने वाले, पुरुषार्थ चतुष्टय (धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष) की प्राप्ति में सहायक हैं- वेद, उपनिषद्, द ान, मानव धर्म ाास्त्र वाल्मीकीय रामायण, व्यास रचित महाभारत, कृष्ण की वाणी से निकली भगवत् गीता तथा विदुर जैसे नीतिज्ञ द्वारा कही गई विदुर नीति। ये तथा इस श्रेणी के अन्य अनेक ग्रन्थ हैं जो हमारे नियमित नैत्यिक स्वाध्याय के क्रम में आते हैं।

महर्षि पतंजलि ने जब राजयोग का प्रणयन किया तो उन्होंने समाधि सिद्धि के लिए अष्टांग योग का विधान किया। बौद्ध धर्म में इसे ही अष्टांगिक में (आठ प्रकार के मार्ग) कहा गया है। आठ योगांगों का सिलसिला यम-नियमों से आरम्भ होता है। अहिंसा, सत्य, अस्तेय ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह पाँच यम हैं। ाौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ई वरप्रणिधान को पाँच नियम कहा गया है। इस प्रकार स्वाध्याय योग के सर्वोच्च सोपान पर चढ़ने की एक प्रमुख सीढी है। पातञ्जल योगद ान पर भाष्य लिखने वाले महर्षि व्यास ने योग की महिमा बताते हुए लिखा कि स्वाध्याय और योग के द्वारा साधक के हृदय में परमात्मा की सत्ता का प्रका ा हो जाता है।

'स्वाध्याय योग सम्पत्या परमात्मा प्रका ाते।'

तैतिरीयोपनिषद् में स्वाध्याय और प्रवचन का महत्व विस्तार से बताया गया है। आचार्य सान्निध्य में पर्याप्त समय तक अध्ययन कर जब ाि ष्य उनसे विदा लेता है तो आचार्य अपने प्रिय ाि ष्य को जो दीक्षान्त उपदे ा देते हैं उनके आरम्भिक वाक्य हैं-

सत्यं वद। धर्मं चर। स्वाध्यायान्मा प्रमद।।
स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम्।।

सत्य बोलने तथा धर्म का आचरण करने के साथ-साथ निरन्तर स्वाध्याय (ाास्त्राध्ययन) में प्रवत्त रहना आव यक बताया गया है। स्वाध्याय का पूरक कर्म है प्रवचन। जो कुछ स्वाध्याय द्वारा उपार्जित किया उसे सूम की नाई स्वयं तक न रख कर हम

उसे अपने प्रवचनों के द्वारा अन्यों तक पहुँचाएँ, यह भी आव यक माना गया है।

तब प्र न होता है कि स्वाध्याय के लिए किन ग्रन्थों को प्राथमिकता दी जाये? मुख्य रूप से तो वेदों का अध्ययन ही स्वाध्याय कहलाता है। गौण रूप से अन्य ऋषिकृत ग्रन्थों को भी स्वाध्याय के समयचक्र (Time Table) में समाहित किया जा सकता है। विद्वानों की मान्यता ही नहीं अपितु यह इतिहास-सिद्ध निष्कर्ष है कि वेद मानव के सर्वाधिक प्राचीन धर्म तथा नीति के विधायक ग्रन्थ हैं।

भारतीय परम्परा में मानव धर्म ाास्त्र के प्रणेता आचार्य मनु ने वेदों को अखिल धर्म का मूल बताया तथा घोषित किया कि वेद ही वह ग्रन्थ है जो पितरों (पूर्वजों), वेदसंज्ञक विद्वानों तथा साधारण मनुष्यों को ज्ञान प्रदान करने वाले नेत्र तुल्य हैं। ये स्वतः प्रमाण हैं। अपनी प्रामाणिकता के लिए ये किसी अन्य ाास्त्र पर निर्भर नहीं हैं। मनु ने तीनों लोकों, चारों आश्रमों तथा चतुवर्ण मानव समाज के लिए वेदों को मार्गद कि बताया। उनका यह भी कथन है कि वेदों को सभी भौतिक तथा आध्यात्मिक विधाओं का आदि स्रोत कहा जाये तो अनुचित नहीं है। कारण कि वेद ाास्त्र का ज्ञाता सेनापति ही राज्य संचालन यहाँ तक कि लोकलोकान्तरों का समुचित नियंत्रण और दण्डनीति का संचालन ठीक प्रकार से कर सकता है। वेदों के महत्त्व और उनकी उपादेयता को पोरस्त्य मनीषियों की भाँति पा चात्य विद्वानों ने भी स्वीकार किया है। प्रसिद्ध भारत विद्याविद् मैक्समूलर ने तो एक लोक के माध्यम से कहा- "जब तक धरती पर ऊँचे िखरों वाले पर्वत और स्वच्छ जल को प्रवाहित करने वाली नदियाँ रहेंगी तब तक ऋग्वेद की महिमा सर्वत्र प्रचलित रहेगी।" अतः स्वाध्याय के लिए सर्वाधिक उपयोगी ग्रन्थ तो वेद ही हैं। जब हम ऋषियों के ऋण से उऋण होने की बात करते हैं तं भारत में उत्पन्न होने वाले पुराकालीन ऋषियों की एक लम्बी परम्परा हमारे समक्ष आ जाती है। ऋषि परम्परा में कपिल हैं जिन्होंने प्रकृति और पुरुष के रूप में अचेतन जड़ तत्त्व तथा

चेतन पुरुष (परमात्मा एवं जीवात्मा) का अभिज्ञान कराया। उनके द्वारा उपदिष्ट सांख्यद र्ान का महत्त्व निर्विवाद है। ऋषियों के क्रम में योग के उपदेष्टा पतञ्जलि पर्याप्त अर्वाचीन हैं। वे ाुंगवं ाीय सम्राट् के राज पुरोहित थे तथा उन्होंने राजा से अ वमेघ यज्ञ करवाया था। महर्षि कणाद ने जिस वै ोषिक द र्ान की रचना की वह आज के परमाणु विज्ञान के काफी निकट है तथा वैज्ञानिक द र्ान कहलाता है। महर्षि गौतम (अक्षपाद) ने न्यायद र्ान का प्रवर्तन किया तथा भारतीय तर्क ाास्त्र (Logic) की नींव डाली। महर्षि बादरायण (व्यास) ने वि वविख्यात वेदान्तद र्ान की रचना की और वि व ब्रह्मांड के नियामक ब्रह्म का दा र्ानिक विवेचन किया। उन्हीं के ि ाष्य महर्षि जैमिनि ने मीमांसा ाास्त्र की रचना की तथा वेदोक्त कर्मकाण्ड का व्यवस्थापन किया। ये ही छः वैदिक द र्ान हैं।

ऋषि परम्परा में महर्षि वाल्मीकि का ाीर्ष स्थान है, जिन्होंने मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम का चरित स्वरचित रामायण महाकाव्य में प्रस्तुत किया। ऋषि श्रेणी में व्यास भी हैं जिन्होंने महाभारत की रचना की और चतुर्विध पुरुषार्थ के साधक इस ग्रन्थ के प्रणेता बने। इस श्रेणी में मनु, याज्ञवल्क्य, पारा ार आदि भी आते हैं जिन्होंने स्मति ग्रन्थों की रचना की तथा मनुष्य के वैयक्तिक पारिवारिक तथा समष्टिगत उत्थानः का विधान प्रस्तुत किया। अन्ततः श्रावणी के दिन से आरम्भ किया यह स्वाध्याय सत्र मार्ग ाीर्ष मास तक चलता है और इस अवधि में गुरु-ि ाष्यों का क्रम पठन-पाठन तथा अध्ययन- अध्यापन के इस लोक के साथ समाप्त होता है।

सहनाववतु सहनौ भुनक्तु सहवीर्यं करवावहै।
तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै।।

हमारा अध्ययन तेजस्वी हो तथा हम द्वेषभाव न रखें।

नन्दनवन, जोधपुर

श्रीकृष्ण की राजनीति और वर्तमान उग्रवाद

-डॉ. अ ोक आर्य

योगिराज श्रीकृष्ण के जन्म से लगभग एक सहस्र वर्ष पूर्व ही इस दे ा की अधोगति आरम्भ हो गई थी। योगिराज ने अपनी नीति के प्रयोग से इस अधोपतन को समाप्त करने का भरपूर प्रयास किया। उनकी इस राजनीति का ही परिणाम था जो भारत दे ा महाभारत काल में ही विदे ाियों का गुलाम होने की अवस्था में था, वह दे ा चार हजार वर्ष बाद में गुलाम हुआ। श्रीकृष्ण के प चात् भी हमारे जिस राजनेता ने उनकी नीति का अनुसरण किया, इतिहास में उसने स्थायी स्थान पाया।

भारतीय इतिहास में महाभारत के प चात् हम चाणक्य को प्रथम राजनेता के रूप मे पाते हैं, जिसने श्रीकृष्ण के आद ा राजनियमों को अपनाया तथा चन्द्रगुप्त को आगे रखकर भारत की सीमाओं को मजबूत किया। फिर ि ावाजी महाराज ने उसी नीति को अपनाते हुए दक्षिण भारत तथा बन्दा बैरागी, हरि सिंह नलवा, महाराजा रणजीत सिंह आदि ने उत्तर भारत में इसी राजनीति का अवलम्बन किया। इसी का परिणाम था कि ये महापुरुष सदा अपने सभी प्रकार के अभियानों में सफल हुए। भारत स्वाधीन हुआ। उस समय दे ा अति विकट अवस्था में था। उस अवस्था में दे ा पुनः बँटकर नष्ट हो जाता यदि श्रीकृष्ण की नीति को अपनाकर सरदार पटेल दे ाी रियासतों की लगाम न कसते।

इस प्रकार के श्रीकृष्ण के बारे में यदि महर्षि दयानन्द ने अपने ाब्दों में कहा कि - "श्रीकृष्ण ने जन्म से मरण पर्यन्त कोई पाप नहीं किया" तो यह कोई अति ायोक्ति नहीं की। महाभारत का वह काल था, जिसमें ब्राह्मण अपनी मर्यादाओं को भूल रहे थे और जन्म को जाति का आधार बनाने में लगे थे। तभी तो एकलव्य व कर्ण को समान ि ाक्षा देने में बाधा खड़ी की गई। वह समय था जब क्षत्रियों की मर्यादाएँ समाप्त हो रही थीं। तभी तो श्रीकृष्ण ने वैदिक मर्यादाओं को

स्थापित करने का प्रयास किया। दे ा कौरव और पाण्डव दो दलों में बँटा था। राष्ट्रीय और धार्मिक भावना के लोग पाण्डवों के साथ थे तथा विदे ी ाक्तियाँ कौरवों के साथ थीं। तभी तो योगीराज श्रीकृष्ण ने पाण्डवों का पक्ष लेकर न केवल दे ा को सुरक्षित ही किया, अपितु खण्डित दे ा को एक केन्द्रीय संगठन भी दिया इस संगठन की कमान युधिष्ठिर को दी।

श्रीकृष्ण की राजनीतिक सूझ इसी से स्पष्ट होती है कि वह राजनीति में दया के स्थान पर जैसे को तैसा के मार्ग पर चलने वाले थे। यही कारण था कि जब कौरव सेना ने भी सभी लड़ाई के नियमों का उल्लंघन करते हुए बालक वीर अभिमन्यु का वध कर दिया तो कृष्ण ने उनके साथ वैसा ही व्यवहार करने का निर्दे ा देकर कुछ भी गलत नहीं किया। इसी नीति के माध्यम से ही तो कर्ण, भीष्म पितामह, अ वत्थामा, काल यवन आदि यहाँ तक कि अन्त में दुर्योधन को भी मारकर व पराजितकर अपनी अद्‌भुत राजनीति का परिचय दिया। यह ठीक भी है। राजनीति में पराजय का नाम मत्यु है तथा जय का नाम है स्वर्गिक आनन्द। जीतना ही धर्म है और हारना अधर्म है। यही कारण है कि जब सन्धि का सन्दे ा लेकर श्रीकृष्ण कौरव दरबार में गए तो पहले से ही ऐसी तैयारी कर गए कि उनके साथ छल न होने पाए। स्वयं तो कौरव दरबार में खड़े थे किन्तु उनके रक्षकों ने पूरे क्षेत्र को घेर रखा था। जब श्रीकृष्ण के ओजस्वी विचारों से कौरव दल के सभी लोग उनके पक्ष मे ंआ गए तो दुर्योधन ने हिरासत में लेने की सोची, किन्तु दूरद र्ी श्रीकृष्ण की पहले से ही की हुई तैयारी यहाँ काम आई। धूर्त दुर्योधन उनका बाल भी बाँका न कर सका।

यह श्रीकृष्ण की नीतियों का ही परिणाम था कि यह दे ा, जो उस समय विर्दे ायों की गुलामी झेलने की अवस्था में पहुँच चुका था, को आपने सुदढ़ कर न केवल इसे बचाया अपितु इसके लगभग चार हजार वर्ष बाद भी यह दे ा बचा रहा। आज जिस प्रकार हमारा भारत दे ा विदे ी उग्रवाद की चपेट में फँसा

है ठीक उसी प्रकार ही मर्यादा पुरुषोत्तम राम के ाासन से पूर्व तथा युधिष्ठिर के ाासन से पूर्व भी उग्रवाद व विदे ाी लोगों के कोप से ग्रसित था। राम व कृष्ण दो ऐसे महान नेता व राजनीतिकार इस दे ा को प्राप्त हुए, जिनकी सफल राजनीति ने उस समय के विदे ाी उग्रवाद को समूल नष्ट कर एक ठोस व मजबूत केन्द्रीय सत्ता इस दे ा में स्थापित कर दे ा को ऐसी सदढ़ पष्ठभूमि दी कि फिर हजारों वर्षो तक उग्रवाद यहाँ अपना फन न उठा सका। आज ठीक वैसी ही अवस्था से दे ा निकल रहा है। प्रतिदिन यहाँ न केवल विदे ायों की घुड़किया मिल रही हैं। इसके साथ ही साथ प्रतिदिन उग्रवादियों द्वारा किए जा रहे बम धमाकों, गोलियों आदि के कारण भारतीय मारे जा रहे हैं।

हमारे राजनेता अपनी दलगत राजनीति में इतने उलझे हुए हैं कि दे ा के इस महान संकट के समय भी एक होकर लड़ने के स्थान पर एक दूसरे को नीचा दिखाने का प्रयास कर रहे हैं। ऐसी अवस्था में दे ा का अवनति की ओर जाना निर्ि चत है। इसी का परिणाम है कि कहीं अतिवष्टि हो रही है और कहीं अनावष्टि, कहीं तो किसी के गोदाम भरे हुए हैं तो किसी को दो जून का भोजन भी नहीं मिल रहा। सभी स्वार्थ के व ाीभूत हो रहे हैं।

आज आव यकता ही नहीं बल्कि इस विदे ाी प्रायोजित आतंकवाद पर काबू पाकर दे ा को ठोस आधार पर देने की है। यह तभी सम्भव होगा जब हमारे राजनेता श्री कृष्ण की राजनीति को न केवल समझेंगे अपितु इसे व्यवहार में लाएँगे। यही एकमात्र हल है इस उग्रवाद के मुँह से दे ा को निकालकर पुनः परम वैभव के पथ पर लाने का। हमें मजबूती से इस राजनीति को अपनाना चाहिए।

आर्य कुटीर, 116, मित्र विहार,
मंडी डबवाली-125104

श्रीकृष्ण के दो रूप

-वीरेन्द्र

श्रीकृष्ण, जिन्हें लोग प्रायः सम्मान और प्रेम से भगवान् कृष्ण भी कहते हैं, हमारे दे ा के उन महापुरुषों में से हैं जिनके कई रूप हमारे सामने आते हैं। एक राजनैतिक रूप और धार्मिक रूप तथा दूसरा नीतिकार का रूप। इसीलिए महर्षि दयानन्द सरस्वती ने अपने अमर ग्रंथ सत्यार्थप्रका ा के 11वें समुल्लास में श्री कृष्ण के विषय में अपने उद्गार निम्नलिखित ाब्दों में प्रकट किये हैं-

'श्रीकृष्ण का इतिहास महाभारत में अत्युत्तम है, उनका गुण, कर्म, स्वभाव और चरित्र आप्त पुरुषों के सद ा है जिसमें कोई अधर्म का आचरण श्रीकृष्ण ने जन्म से मरण पर्यन्त बुरा काम कुछ भी किया हो ऐसा नहीं लिखा।'

इस प्रकार महर्षि दयानन्द ने न केवल महाराज कृष्ण को अपनी श्रद्धांजलि भेंट की है, अपितु भागवत् पुराण का वास्तविक रूप भी हमारे सामने रख दिया है। पुराणों में जो कथाएँ आती हैं उनमें से कई ऐसी भी हैं जिनके कारण हमारा धर्म बदनाम हुआ है। मैं आज के इस लेख में उन विषयों में कुछ कहना नहीं चाहता। परन्तु इसमें कोई संदेह नहीं कि पुराणों में जो कुछ लिखा गया है उसके कारण हमारे धर्म और संस्कृति के विषय में कई प्रकार की भ्राँतियाँ पैदा हुईं। श्रीकृष्ण भी उन भ्रांतियों के ि ाकार हुए।

आज जब हम श्रीकृष्ण के जीवन पर दष्टिपात करते हैं तो उनके धार्मिक एवं राजनीतिक दोनों रूप हमारे सामने आते हैं। महाभारत के युद्ध के समय उन्होंने जो भूमिका निभाई थी उसमें उनके धार्मिक एवं राजनैतिक रूप दोनों सामने आते हैं, उसे देखकर यह भी प्रतीत होता है उनकी राजनीति उनके ध ार्म से पथक न थी। धर्म की रक्षा के लिए ही वे राज्य सत्ता का प्रयोग करना चाहते थे। जब उन्होंने देखा कि जिस राज्यसत्ता के लिए वे प्रयत्न कर रहे हैं वह नहीं मिल रही तो उन्होंने पांडवों की भावनाओं को उभारना प्रारम्भ किया और कुरुक्षेत्र के युद्ध को एक धर्मयुद्ध का रूप दे दिया। युद्ध प्रारम्भ होने से पहले उनका राजनैतिक रूप हमारे सामने आता है। जब वे ाांति के दूत बनकर दुर्योधन के पास गये थे और उसे बहुत समझाने का प्रयत्न किया कि वह किसी प्रकार पांडवों को यदि और कुछ नहीं दे सकता तो कम से कम पाँच

गाँव तो दे दे, वे नहीं चाहते थे कि युद्ध हो। इसलिए उन्होंने केवल पाँच गाँव माँगे और बाकी का सारा राज्य दुर्योधन के लिए छोड़ दिया। परन्तु जब उन्होंने देखा कि वह यह भी देने के लिए तैयार नहीं तो उनका राजनैतिक रूप धार्मिक रूप में बदल गया। कुरुक्षेत्र के रणक्षेत्र में गीता के रूप में उन्होंने अर्जुन को जो उपदे I दिया उसका सारां I यह था कि मनुष्य का धर्म क्या है और उसे क्यों पूरा करना चाहिए। अर्जुन घबरा रहा था, उसकी I क्ति क्षीण हो रही थी परन्तु श्रीकृष्ण ने अपने उपदे I से उसे फिर खड़ा कर दिया। बार-बार वह एक ही बात कहते थे, जिसका सारां I यह था **'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।'** अर्थात् तू कर्म कर फल की चिन्ता मत कर। यह एक ऐसा उपदे I है जो प्रत्येक मनुष्य के जीवन में सदा ही उसका पथ-प्रद I न करता रहेगा। हम जब भी कोई काम करने लगते हैं तो एक बार हमारे मन-मस्तिष्क में, यह विचार अव I य उठता है कि हम जो कुछ करने लगे हैं वह करें या न करें। यह भी प्र I न उठता है कि जब भी कोई काम करने लगे तो पहले यह सोचो कि यह हमारा कर्तव्य है या नहीं। यदि कोई ऐसा काम है, जो कर्तव्य की श्रेणी में नहीं आता, वह करूँ या नहीं? परन्तु जो कर्तव्य बन जाता है उसे अव I य करना चाहिए और उसके लिए यह नहीं सोचना चाहिए कि कल क्या होगा। कर्तव्य कर्म करना मनुष्य का धर्म है। फल देने का अधिकार किसी और के अधिकार में है। यदि हम जीवन के इस रहस्य को समझ लें तो हमारी कई समस्याओं का समाधान हो सकता है। इसमें संदेह नहीं कि राजनीति में नैतिक मूल्यों का मापदंड कुछ और ही होता है। परन्तु यदि हम वहाँ भी अपने कर्तव्य को पूरा करते जायें तो किसी बड़ी से बड़ी दुर्घटना में भी हमें कोई निरा II न होगी। आज हमारे लिए सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि हम अधिकार तो माँगते हैं परन्तु अपना कर्तव्य पूरा करना नहीं चाहते। यदि हम यह समझ लें कि कर्तव्य पहले आता है और अधिकार बाद में तो हमारा मार्ग प्र I स्त हो जायेगा। फिर हमें कोई निरा II न होगी। परन्तु यदि हम अधिकार ही माँगते रहें और कर्तव्य पूरा न करें तो फिर हमें प्रायः निरा I होना पड़ेगा। परन्तु उसका उत्तरदायित्व हमारे अपने ऊपर ही होगा, किसी और पर नहीं।

संस्कृत सदियों से दे ा की सांस्कृतिक एकता की भाषा

(श्रावणी–संस्कृत दिवस पर)

–प्रो. चन्द्रप्रका ा आर्य

संस्कृत भारत की प्राचीनतम भाषा है। वि व की प्राचीनतम भाषाओं में इसका सर्वोपरि स्थान है। मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषाओं–पालि, प्राकृत तथा अपभ्रं ा से इसका सीधा संबन्ध है। आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं–मराठी, गुजराती, पंजाबी, बंगला, असमिया, उड़िया आदि इससे जुड़ी हुई हैं। यहाँ तक कि दक्षिण भारत की भाषाओं–तेलुगु, तमिळ, कन्नड़ तथा मलयालम में भी संस्कृत की ाब्दावली का आधिक्य है। डॉ. रामविलास ार्मा के अनुसार आर्य द्रविड़ भाषाओं का प्राचीनतम विकास एक जैसे सांस्कृतिक वातावरण में हुआ है। संरचना के विचार से ाब्द निर्माण में अनेक आर्य तथा द्रविड़ प्रत्यय सामान्य है। (देखें पुस्तक "भारत के प्राचीन भाषा परिवार और हिन्दी", भाग तीन प. 242, के. के. बिरला फाउंडे ान, नई दिल्ली द्वारा 1971–1991 तक की सर्वश्रेष्ठ पुस्तक) संस्कृत का साहित्य समस्त भारतीय भाषाओं के लिए प्रेरणास्रोत है, आधारस्रोत है। संस्कृत भारत की सांस्कृतिक एकता की वाहक है। जिसे हम भारतीय संस्कृति कहते हैं वह संस्कृत में निहित है।

दे ा की सामाजिक एवं सांस्कृतिक एकता में संस्कृत का अभूतपूर्व योगदान रहा है। यहाँ ग्रीक आए, यवन आए, हूण और ाक आए, तुर्क और मंगोल आए, लूटा और चले गए। मुग़लों–मुसलमानों ने 600 वर्षों तक यहाँ राज किया तथा बाद में ब्रिटि ा ाासन भी यहाँ लगभग 200 वर्षो तक रहा किन्तु इस दे ा की सांस्कृतिक विचारधारा वही रही। उसकी संस्कृति का साहित्य पूरे दे ा में पढ़ा और लिखा जाता रहा। संस्कृत का साहित्य पूरे दे ा में स्वीकृत था। संस्कृत की संस्कृति पूरे दे ा में मान्य थी। दे ा की सामाजिक और धार्मिक मान्यतायें तथा आचार–विचार संस्कृत की ही संस्कृति से ाासित होते

थे और आज भी यह परम्परा जारी है। वेद, उपनिषद्, द र्न, रामायण, महाभारत, गीता, मनुस्मति आदि ग्रन्थ आज भी दे । में मान्य हैं। उनको उसी आदर एवं श्रद्धा-प्रेम से देखा जाता है। उनकी कथा-चर्चा, उनका-श्रवण, अध्ययन अब भी होता है। क मीर से केरल पर्यन्त संस्कृत में साहित्य लिखा जाता था और पढ़ा जाता था। आदि ंकराचार्य यदि केरल में थे तो प्रत्यभिज्ञा द र्न क मीर की देन है। इसे क मीरी ैव द र्न भी कहा जाता है। इसके 60-70 ग्रंथ जम्मू-क मीर संस्कृत सिरीज़ में प्रका ात हुए हैं। (द्र. "भारतीय द र्न" - महामहोपाध्याय डॉ. उमे । मिश्र, चतुर्थ संस्करण 1979 प. 379-381)। इस मत के विद्वानों में वसुगुप्त, सोमानन्द, उत्पलाचार्य, अभिनव गुप्त, भास्कर, क्षेमराज आदि का नाम उल्लेखनीय है। यही नहीं क मीर में संस्कृत के अनेक कवि भी हुए हैं, उनमें क्षेमेन्द्र, श्रीहर्ष, बिल्हण, कल्हण और जल्हण आदि का नाम आता है। कल्हण की 'राजतरंगिणी' प्रसिद्ध ऐतिहासिक काव्य है। कथा साहित्य में गुणाढ्य की बहत्कथा (500 ई.) क मीर की संस्कृत को अनुपम देन है। देखें "संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास" पद्मश्री डॉ. कपिलदेव द्विवेदी, चतुर्थ संस्करण 1975 प. 260)। पाँचवी सदी से लेकर 13वीं सदी तक संस्कृत के अनेक क मीरी कवि मिलते हैं। संस्कृत काव्य ाास्त्र के अनेक आचार्य क मीर के थे। रुद्रट (9वीं सदी ई.पू.) क मीर के थे अलंकार ाास्त्र के प्रसिद्ध आचार्य आनन्दवर्धन क मीर के राजा अनन्तिवर्मा (755-773 ई.) के सभा पंडित थे। कुन्तक और महिमभट्ट (11वीं सदी) क मीर के निवासी थे। संस्कृत काव्य ाास्त्र के प्रसिद्ध आचार्य मम्मट भी का मीर के निवासी थे (विस्तत वर्णन के लिए द्र. "संस्कृत साहित्य का इतिहास" आचार्य बलदेव उपाध्याय, संस्करण 1973 प. 603-609)

मध्यकाल का भक्ति आन्दोलन जो दक्षिण भारत से प्रारंभ होकर पूरे दे । में फैल गया था। उसका मूलस्रोत संस्कृत में था। बादरायण व्यास रचित ब्रह्मसूत्र या वेदान्तद र्न इस भक्ति आन्दोलन का मूल था। इस पर दक्षिण के अनेक आचार्यों ने

संस्कृत में अपने भाष्य और टीकायें लिखीं। इन आचार्यों ने अपने सिद्धांतों की स्थापना संस्कृत के माध्यम से की। सर्वप्रथम ांकराचार्य ने 'ब्रह्मसूत्र' पर संस्कृत में ' ाारीरिक भाष्य' लिखकर उसकी अद्वैतवादी व्याख्या की। उन्होंने उपनिषद् और गीता पर भी टीकायें लिखीं। उनके बाद रामानुजाचार्य (11-12वीं सदी) ने ब्रह्मसूत्रों पर 'श्री भाष्य' लिखा। भगवद्गीता पर भी उन्होंने भाष्य लिखा। उन्होंने विाि ष्टाद्वैतमत की स्थापना की। उन्होंने संस्कृत में वेदान्तसार, वेदार्थ संग्रह तथा वेदान्तदीप आदि महत्वपूर्ण ग्रन्थ लिखे। 12वीं सदी में निम्बार्काचार्य ने वेदान्त/ब्रह्मसूत्र पर वेदान्त पारिजात सौरभ नामक भाष्य लिखा और द्वैताद्वैतवाद की स्थापना की। मध्वाचार्य (13वीं सदी) ने ब्रह्मसूत्रों, उपनिषदों तथा गीता पर भाष्य लिखे और द्वैतवाद की स्थापना की। वल्लभाचार्य (14वीं-16वीं सदी) ने ब्रह्मसूत्रों पर 'अणुभाष्य' लिखकर ाुद्धाद्वैतवाद की स्थापना की। इनका मत पुष्टिमार्ग के नाम से प्रसिद्ध है। कुछ अन्य विद्वानों ने भी वेदान्त पर टीकायें लिखीं। (विस्तार के लिए द्र. 'वेदप्रामाण्य मीमांसा तथा ऋषि दयानन्द' - डॉ श्रीनिवास ाास्त्री-कुरुक्षेत्र वि ववविद्यालय, कुरुक्षेत्र 1970-71 प. 254-255)। दक्षिण के ये सभी आचार्य संस्कृत के विद्वान् थे। भक्तिमार्ग के ये प्रतिष्ठापक आचार्य माने जाते हैं। इन्होंने भक्ति की सैद्धान्तिक व्याख्या की।

बाद में रामानन्द इसे उत्तर भारत में लाए- **भक्ति द्राविडी ऊपजी लाए रामानन्द।** भक्ति आन्दोलन को दक्षिण भारत से उत्तर भारत में लाने का श्रेय स्वामी रामानन्द को है। वे स्वयं संस्कृत के पंडित थे। वैष्णव मताब्द भास्कर तथा श्रीरामार्जुन पद्धति इनके प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं। यही भक्ति आन्दोलन पूरे दे ा में फैल गया था। बाद में रामभक्ति और कृष्णभक्ति, निर्गुण और सगुण भक्ति के रूप में इनका प्रचार हुआ।

आधुनिक काल में भी भारतीय नवजागरण का सन्दे ा देने वाले लोग तथा संस्थायें संस्कृत तथा भारतीय संस्कृति की विचारधारा से अनुप्राणित थे। इन संस्थाओं में ब्राह्म समाज, प्रार्थना समाज, आर्यसमाज, रामकृष्ण मि ान तथा थियोसोफिकल सोसाइटी का नाम लिया जा सकता है। इनमें ब्राह्मसमाज के

संस्थापक राजा राममोहन राय ने स्वयं बनारस जाकर संस्कृत तथा उपनिषदों का अध्ययन किया था। प्रार्थनासमाज के संस्थापक महोदय गोविन्द रानाडे भारतीय संस्कृति में गहरी रुचि रखते थे और इसे वैज्ञानिक एवं तर्कसंगत बनाने पर जोर देते थे। फिर वे ऋषि दयानन्द के ि ाष्य बने। आर्यसमाज के प्रवर्तक महर्षि दयानन्द संस्कृत तथा वेदों के प्रकाण्ड पंडित थे। रामकृष्ण मि ान के स्वा. विवेकानन्द ने वेदान्त की नई व्याख्या की और इसे जन-जन तक पहुँचाने का प्रयास किया। थियोसॉफिकल सोसाइटी की श्रीमती एनी बेसेन्ट ने घूम-घूम कर पूरे दे ा में भारतीय संस्कृति और अध्यात्म का प्रचार किया। अरविन्द घोष ने पांडिचेरी में स्थापित आश्रम में रहकर उपनिषद्, गीता तथा योग पर अंग्रेजी में निबन्ध तथा अन्य पुस्तकें लिखीं (द्र. (1) हिन्दी साहित्य का इतिहास (डॉ. नगेन्द्र) संस्करण 25वां, 1997 प. 176, प. 138-440 (2) हिन्दी साहित्य-युग और प्रवत्तियाँ-डॉ. ि ावकुमार ार्मा, संस्करण 25वां, 1996, प. 4-6, प. 410-414-अ ाोक प्रका ान, नई सड़क दिल्ली-6)

राजनीतिक क्षेत्रों में तिलक ने 'गीतारहस्य' नामक ग्रन्थ लिखा। गाँधी जी की गीता में गहरी रुचि थी। वे गीता को अपने जीवन का प्रेरणास्रोत मानते थे। नेहरु जी की 'डिस्कवरी ऑफ इण्डिया' में प्राचीन भारत एवं भारतीय संस्कृति की ही खोज है। श्री विनोबा भावे ने 'गीता प्रवचन भाष्य' लिखा। श्री सी. राजगोपालाचारी ने महाभारत का अंग्रेजी में अनुवाद किया, उस पर अंग्रेजी में पुस्तक लिखी। (भारतीय विद्या भवन, के. एम. मुन ाी मार्ग, बम्बई-400007)। श्री के. एम. मुन ाी ने भारतीय विद्या भवन (बम्बई) की स्थापना कर संस्कृत एवं भारतीय संस्कृति के अनेक ग्रंथों का प्रका ान किया। हिस्ट्री एण्ड कल्चर ऑफ इंडियन प्यूपल (डॉ. आर. सी. मजूमदार) दस-ग्यारह खंडों में प्रका ाित हुई। यह भारतीय विद्या भवन द्वारा ही प्रका ाित है। आधुनिक काल के अन्य महान् भारतीयों में श्रीनिवास ाास्त्री 'रामायण पर व्याख्यान' देते थे।

ई वरचन्द्र विद्यासागर संस्कृत के विद्वान् थे। महामना मदनमोहन मालवीय भारतीय संस्कृति के अनन्य भक्त थे। बनारस हिन्दू वि ववविद्यालय उन्हीं के द्वारा स्थापित किया गया था। स्वा. रामतीर्थ गणित के प्रोफेसर थे किन्तु व्याख्यान वेदान्त पर देते थे। रवीन्द्रनाथ टैगोर उपनिषदों के अनन्य प्रेमी थे। उनकी गीतांजलि पर उपनिषदों का गहरा प्रभाव है। वे कबीर दास के अनन्य भक्त थे। डॉक्टर राधाकृष्णन ने उपनिषदों और भारतीय द र्नन की अंग्रेजी में व्याख्या की। अंग्रेजी में इंडियन फिलासफी उनका प्रसिद्ध ग्रन्थ है। इस प्रकार इन आधुनिक महान् भारतीयों के लिए संस्कृत तथा भारतीय संस्कृति प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से प्रेरणा का मूल स्रोत रही हैं।

संस्कृत और भारतीय संस्कृति इस्लाम, ईसाई और पारसी धर्मों/मतों से पहले की है। यह बौद्ध और जैन धर्म से भी प्राचीन है, तभी महात्मा बुद्ध और महात्मा महावीर स्वामी ने इसकी रूढ़ियों तथा बुराइयों का विरोध किया। संस्कृत प्राचीनकाल में जनभाषा थी। बुद्ध और महावीर ने पालि और प्राकृत जनभाषाओं का सहारा लिया था। उस समय संस्कृत केवल उच्चकुलीन एवं प्र ाासक वर्ग की भाषा थी। आज दे ा के राजनेता, धार्मिक गुरु जनता से सम्पर्क के लिए हिन्दी तथा अन्य भारतीय जनभाषाओं का प्रयोग करते हैं, अंग्रेजी का नहीं। फिर अंग्रेजी 100 करोड़ लोगों के दे ा में किसी प्रदे ा या गाँव की भाषा नहीं है, परन्तु यह प्र ाासन की भाषा बनी हुई है। संस्कृत के बारे में यह नहीं कहा जा सकता क्योंकि संस्कृत दे ा में प्र ाासन के साथ-साथ साहित्य की भी भाषा थी। तत्कालीन साहित्य अधिकां ातया संस्कृत में लिखा गया। यहाँ तक कि महात्मा बुद्ध और महावीर स्वामी के बाद उनके अनुयाइयों ने भी बौद्ध और जैन धर्म का प्रचार करने के लिए संस्कृत को अपनाया। बौद्ध द र्नन के प्रामाणिक लेखक आचार्य नरेन्द्रदेव ने लिखा है कि महायान के अनेक ग्रन्थ वि ोषकर 'वैपुल्यसूत्र' तथा 'प्रज्ञा पारमितासूत्र' और हीनयान के अन्तर्गत 'सर्वास्तिवाद' के आगम ग्रन्थ संस्कृत भाषा में ही मिलते हैं।

अपनी विरासत समझने के लिए संस्कृत जानना जरूरी

–सत्यव्रत ास्त्री

सत्यव्रत ास्त्री छह द ाकों से संस्कृत की सेवा में लगे हैं। कई दे ाों में उन्होंने संस्कृत ि ाक्षण किया है। वह साहित्य अकादमी के फैलो चुने गए। संस्कृत के किसी विद्वान को पहली बार यह सम्मान मिला। 1930 में जन्मे प्रो. ास्त्री को पद्‌म विभूषण और ज्ञानपीठ सहित अनेक सम्मान मिल चुके हैं। प्रस्तुत है उनसे राजे ा मिश्र की बातचीत–

प्र न : आज के दौर में संस्कृत पढ़ने का क्या लाभ?
अपनी विरासत को समझने के लिए संस्कृत का ज्ञान जरूरी है। यह गलत प्रचारित किया गया है कि संस्कृत देवभाषा और किसी खास वर्ग की भाषा है। यह जनसाधारण की भाषा है। इसे किसी भी संप्रदाय वि ोष या जाति वि ोष से जोड़ना पूरी तरह से गलत है। संस्कृत के विकास में मुसलमानों और ईसाइयों का भी बहुत बड़ा योगदान रहा है। अब्दुल रहीम खानाखाना ने 'खैटकौतुकम्' व 'रहीमकाव्यम्' लिखा है, जो सुप्रसिद्ध काव्य है। उस दौर में तो अनेक ऐसे ग्रंथ लिखे गए थे, जिनमें आधे लोक उर्दू, ब्रज, अवधी या भोजपुरी में और आधे संस्कृत में लिखे गए। इसलिए इस भाषा को किसी खास वर्ग से जोड़ना आधारहीन है। भारत की तमाम भाषाओं और बोलियों में संस्कृत के ाब्द प्रचुर मात्रा में हैं। इसकी जानकारी अन्य भारतीय भाषाओं को जानने के लिए भी जरूरी है। आप संस्कृत जानते हैं तो अन्य भारतीय भाषाओं को जल्दी सीख सकते हैं। दक्षिण-पूर्व ए ियाई दे ाों के साथ संबंध विकसित करने के लिए संस्कृत का अध्ययन उपयोगी साबित हो सकता है। वहाँ की सभी भाषाओं में संस्कृत ाब्दावली का भरपूर इस्तेमाल होता है। संस्कृत उन दे ाों को भारत से जोड़ने वाली महत्वपूर्ण कड़ी है।

इस भाषा के प्रति अपने दे ा में उपेक्षा का भाव क्यों है?

हम इसकी सामर्थ्य से परिचित नहीं है, या फिर जानबूझकर इसकी अनदेखी कर रहे हैं। अगर संस्कृत हमारी राष्ट्रभाषा होती तो भाषा को लेकर जितने विवाद इस दे ा में हुए या हो रहे हैं, वे नहीं होते। भारत की सभी भाषाओं और बोलियों का मूल स्रोत संस्कृत ही है। दे ा की किसी भी प्रादे ाक भाषा को ले लीजिए, उस भाषा के ुरुआती सारे लेखक संस्कृत के ही जानकार थे। यही कारण है कि भारत की किसी भी भाषा में लिखे साहित्य में संस्कृत के ाब्द भरपूर मात्रा में मिल जाएँगे। प्रादे ाक भाषाओं ने तो साहित्यिक रचनाओं की थीम भी संस्कृत से ही ली है। रामायण, महाभारत और अन्य पौराणिक आख्यान सभी भारतीय भाषाओं के साहित्य के मूल स्रोत रहे हैं। भारत की आम बोलचाल की भाषा में संस्कृत का प्रभाव साफ दिखता है। जैसे, हिन्दी में हम 'नींद' कहते हैं। संस्कृत में हम इसे निद्रा कहते है, जो भारत की अनेक प्रादे ाक भाषाओं में इस्तेमाल होता है। यदि द्रविड़ भाषाओं में संस्कृत ाब्दों के प्रति ात की बात करें तो मलयालम में लगभग 70 प्रति ात ाब्द संस्कृत से निकले हैं। तेलुगु में लगभग 60 प्रति ात संस्कृत ाब्द हैं। कन्नड़ व तमिल में भी काफी ाब्द संस्कृत के हैं। पूर्वी भारत की बात करें तो वहाँ की उड़िया, असमिया और बांग्ला में संस्कृत ाब्दों की भरमार है।

संस्कृत से दक्षिण-पूर्व-ए ायाई दे ाों की भाषाएँ कैसे करीब हैं?

दक्षिण-पूर्व-ए ाया की भाषाओं में संस्कृत ाब्द अच्छी तादाद में हैं। हाँ, मूल उच्चारण में जरूर थोड़ा-बहुत अंतर है। यह ठीक वैसे ही है जैसे हमारे यहाँ 'घट' का 'घड़ा' बन गया। यदि थाई भाषा में दक्षिण-पूर्व कहना हो तो वे 'आख्नेय' कहेंगे। यह 'आख्नेय' संस्कृत के 'आग्नेय' ाब्द से बना है। बैंकाक में 9 यूनिवर्सिटी हैं जिनमें से 7 के नाम संस्कृत में हैं। एक यूनिवर्सिटी का नाम है- धर्म ाास्त्र वि ववि‌द्यालय। इस वि ववि‌द्यालय की एक बिल्डिंग का नाम है- साला अनेक

प्रसंगू। इसका मतलब है मल्टीपरपज बिल्डिंग। लाओ भाषा में 'वन-वे' के लिए 'एक दि ाा मार्ग' ाब्द है। इसी तरह से वहाँ हजारों ाब्द संस्कृत के प्रचलित हैं। 'वर्ल्ड बैंक के लिए 'लोक धनागार' ाब्द है। इंडोनेि ाया में हाथी को 'गजो' कहा जाता है। भारत में भी गज का मतलब हाथी है। 'गार्डन' के लिये 'उद्यान' ाब्द चलता है। इन दे ाों में जाने के बाद आपको लगेगा ही नहीं कि आप किसी दूसरे दे ा में हैं।

संस्कृत को आम लोगों तक पहुँचाने के लिए क्या करना चाहिए?

संस्कृत के प्रचार-प्रसार के लिए इसे एक हॉबी सब्जेक्ट के रूप में पढ़ाया जाना चाहिए। इसके साथ ही संस्कृत के जानकारों को भी आगे आना होगा। सारा काम सरकार पर ही नहीं छोड़ा जा सकता। सरकार आर्थिक सहायता या अन्य सुविधाएँ दे देगी। लेकिन व्यक्ति और समाज को ही आगे आना पड़ेगा। आज लोगों में इस भाषा को सीखने की उत्सुकता बढ़ी है। विदे ाों में भी संस्कृत सीखने की ललक है। लेकिन दिक्कत यह है कि संस्कृत पढ़ाने वाले अध्यापक खुद ही अपने बच्चों को संस्कृत नहीं पढ़ाते हैं। इस भाषा के जानकारों पर एक बड़ी जवाबदेही है। संस्कृत सिर्फ भाषा नहीं है, यह भारत की आत्मा हैं।

- जो सत्य है, उसे साहसपूर्वक निर्भीक होकर लोगों से कहो-उससे किसी को कष्ट होता है या नहीं, इस ओर ध्यान मत दो। दुर्बलता को कभी प्रश्रय मत दो। सत्य की ज्योति 'बुद्धिमान' मनुष्यों के लिए यदि अत्यधिक मात्रा में प्रखर प्रतीत होती है, उन्हें बहा ले जाती है, तो ले जाने दो-वे जितना ाीघ्र बह जाएँ उतना अच्छा है।
- उठो, जागो और तब तक रुको नहीं जब तक मंजिल प्राप्त न हो जाए।

-स्वामी विवेकानन्द

राष्ट्र का विकास गुरुकुल िक्षा से ही सम्भव

–प्रो. विजयेन्द्र स्नातक

गुरुकुल वैदिक िक्षा के केन्द्र हैं। वैदिक िक्षा भारतीय प्राचीन िक्षा है जहाँ मानव धर्म की िक्षा दी जाती है। सत्याचरण को बालक-बालिकाओं के जीवन का आव यक अंग बनाया जाता है। राष्ट्र, समाज व मानवता के प्रति ऐसे बालक समर्पित रहते हैं। यहाँ भ्रष्टाचार, पापाचार, असत्य, अन्याय को कोई स्थान नहीं है। वे माता-पिता, आचार्य, वद्धों का सम्मान करना अपना दायित्व समझते हैं। अनेक ब्रह्मचारी विद्यालयों से निकलकर संसार व राष्ट्र हेतु कीर्तिमान स्थापित करते हैं।

आज की पा चात्य िक्षा पद्धति श्रेष्ठ नहीं है। यदि श्रेष्ठ होती तो विद्यालयों में अध्यापक व विद्यार्थियों में अनु ाासनहीनता न होती। आज विद्यालयों में गुरु-ि ाष्य, मद्य, मांस, धूमपान तथा मादक द्रव्यों का अत्यधिक प्रयोग करते देखे जाते हैं। कभी-कभी गुरु व ि ाष्याओं के मध्य सीमाओं का उल्लंघन भी होते देखा जाता है। ाारीरिक सम्बन्धों में भी कमी नहीं रहती।

चलचित्र जगत का भी प्रभाव अत्यधिक है जहाँ लूटपाट, हत्याकाण्ड, अपराध व कामुकता का तथा पा चात्य संस्कृति का प्रचार विदे ाी चैनलों पर खुलकर हो रहा है। इसका प्रभाव आज के विद्यार्थी पर पड़े बिना कैसे रह सकता है? अनेक छात्राएँ दिल्ली, मुम्बई, मेरठ आदि अनेक नगरों में होटलों, रेस्तराँ, ब्यूटी पार्लरों आदि में देह व्यापार के धंधों से संलिप्त पाई व पकड़ी गई हैं। (ब्लू फिल्में) अ लील चलचित्रण के कई मामले प्रका ा में आए हैं। यह सब आधुनिक व पा चात्य िक्षा का ही प्रभाव है।

अंग्रेजी अथवा पा चात्य िक्षा प्रणाली भौतिकवाद की िक्षा देती है जहाँ अध्यात्म का कोई स्थान नहीं है। न ही नैतिक

ि क्षा है न आचरण का कोई स्थान है। आचरणहीन ि क्षा का कोई औचित्य भी नहीं है। इससे मानव जीवन का निर्माण तो हो ही नहीं सकता केवल जीवन-यापन, सुख-भोग हेतु स्थान अव य मिल सकता है। भौतिक उन्नति कोई बुरी नहीं। यह भी आव यक है परन्तु इसके साथ चरित्र का निर्माण न हो, आध्यात्मिक ज्ञान व सत्याचरण न हो तो ऐसी भौतिक उन्नति दुःखदायी बन जाती है। यही कारण है कि उच्चस्थ पदाधिकारी, सत्ताधारी भ्रष्टाचार, अन्याय, अंधवि वास व अपराधों में संलिप्त हो रहे हैं। अधिकां ा जन धन को ही महत्व देते हैं। उनके लिए समाज व परिवार-सम्बन्ध भी व्यर्थ के विषय हैं। वह अध्यात्म, वेद ि क्षा से दूर रह कर परमात्मा को भुला बैठे हैं। उनका मानव व मानवता से भी कोई सम्बंध नहीं। यदि है भी तो इसलिए कि कहीं उनका धन का धंधा कम न हो जाए। वहाँ केवल स्वार्थपूर्ण सम्बन्ध ही रह जाते हैं। जब तक वेद की ि क्षा रही, आश्रम व्यवस्था, वर्ण व्यवस्था मनु के अनुसार रही तब तक पथ्वी पर आर्यों का ाासन एक बड़े भूभाग पर था। उस समय गुरुकुलों को प्राथमिकता प्राप्त थी। दे ा-विदे ाों से छात्र पढ़ने आते थे। वि व भर में श्रेष्ठता का प्रचार होता था। वैदिक ज्ञान का प्रका ा पूरी पथ्वी पर था। कहीं अन्याय पक्षपात न था। यदि कोई भूल किसी से हो जाती थी तो वे स्वयं ही प्रायि चत्त कर लेते थे। न्यायालयों की आव यकता ही नहीं पड़ती थी। राजा, सेनापति, आचार्य पूर्ण विद्वान् होते थे। चारों वेदों का ज्ञान प्राप्त करके धर्म के मार्ग पर चलते हुए ाासन चलाते थे और वे चक्रवर्ती ाासक होते थे। परिवारों की स्थिति अच्छी होती थी। सभी के लिए ि क्षा प्राप्त करना आव यक था। परिवार बड़े होते थे। कई पीढ़ियाँ एक साथ रहती थीं। सभी मिलकर कृषि व व्यापार आदि कार्य करते थे। घर-घर में अग्निहोत्र होते थे। ईर्ष्या, द्वेष नहीं होता था, न कहीं झगड़ा आदि होता था। घर में वद्धजनों

का सम्मान होता था, वद्धजन बालकों को सदाचरण की िक्षा देते थे और कुमार्ग से बचाते थे। बालकों को संस्कार की िक्षा मिलती थी। कहीं चोरी, व्यभिचार, अनाचार नहीं होते थे। यह सब गुरुकुलों तथा वैदिक िक्षा का प्रभाव था।

विदे ी आक्रमणों से हमारी प्राचीन संस्कृति, वैदिक िक्षा का प्रचार तथा गुरुकुल प्रणाली नष्टप्राय हो गई। छठी सदी ईस्वी पूर्व पर्िया के सम्राट दारयबाहु (521-485 ई.पू.) ने भारत पर आक्रमण किया। चौथी सदी ई. पू. में मैसिडोनिया के राजा सिकन्दर ने आक्रमण किया, परन्तु सबसे अधिक क्षति मौर्य राजा सम्राट् अ ोक की धर्म विजय की नीति से हुई। सैन्य क्ति क्षीण हो गई। उसने क्षत्रियों को अस्त्र- स्त्र न उठाने का प्रण कराया। इससे यवन, क, पल्लव, कुषाण आक्रान्ताओं को भारत में राज्य स्थापित करने का अवसर प्राप्त हो गया। क्षत्रियों की सैन्य क्ति के क्षीण होने से आठवीं सदी से अरबों के आक्रमण आरंभ हो गए परन्तु वह भारत पर विजय प्राप्त न कर सके। दसवीं सदी में तुर्कों ने भी आक्रमण ुरू कर दिए। मध्य युग में अनेक सन्त-महात्माओं ने प्रचार कर भारतीय संस्कृति को बनाए रखा।

भारत पर विदे ी आक्रमण होते रहे, संस्कृति व धर्म पर भी अतिक्रमण हुए परन्तु अठारहवीं सदी के उत्तरार्द्ध में ईसाई मतावलम्बियों के प्रचार से भारतीय संस्कृति की हानि होनी आरम्भ हो गई। अंग्रेजी ासन में ईसाई मत के प्रचार को पूर्ण सहायता प्राप्त थी। अंग्रेजी िक्षा का प्रचार हुआ। उसके साथ अन्य भौतिक विषय भी आए। ईसाई मि नरी अपना पूर्ण विस्तार कर रहे थे।

कोलकाता में हिन्दू कालेज खोला गया जिसका नाम बाद में 'प्रेसीडेंसी कालेज' कर दिया गया। यह अंग्रेजी िक्षा का एक बड़ा केन्द्र था। अंग्रेजों ने अंग्रेजी िक्षा के प्रचार हेतु मि नरी विद्यालयों को खोलने पर अधिक ध्यान दिया। 1855 में ऐसे

1151 विद्यालय थे। 1885 में अंग्रेजी माध्यम से शिक्षा प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों की संख्या 25 लाख से ऊपर थी।

अंग्रेजी शिक्षा भारतीय प्राचीन पद्धति के लिए हानिकारक सिद्ध हुई। ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने सन् 1800 में फोर्ट विलियम कालेज में ऐसी व्यवस्था बनाई कि उस विद्यालय में ऐसे ही अध्यापक लिए जाएँ जो ईसाई मत के विरुद्ध सार्वजनिक या निजी जीवन में कोई विचार प्रकट नहीं करेंगे। सन् 1818 में श्रीरामपुर कालेज की स्थापना भी ईसाईधर्म के प्रचारार्थ हुई थी। विद्यार्थियों को ईसाई मत स्वीकार करने हेतु शिक्षा दी जाती थी। अंग्रेजी के प्रचार से भारतीय संस्कृति दबने लगी।

आज की शिक्षा पद्धति मैकाले के विचारों की है। आज भारत के कोने-कोने में कान्वेंट स्कूलों (अंग्रेजी माध्यम) की भरमार है, यहाँ तक कि यह पाश्चात्य पद्धति अब गाँवों में भी पैर पसार रही है। लार्ड पामर्स्टन ने तो उस समय व्यापार में लाभ हेतु इंग्लैण्ड के पक्ष में अंग्रेजी का प्रचार भारत के कोने-कोने में करने को कहा था। अंग्रेजी व्यवसाय हेतु ही चर्च ऑफ इंग्लैण्ड, अमेरिकन प्रेस्टिविरियन चर्च आदि अनेक संगठनों ने भारत में अंग्रेजी का प्रचार किया था परन्तु आज हम भारतवासी ही उस पाश्चात्य पद्धति का प्रचार करने में लगे हैं जिससे भारतीय संस्कृति पर आघात हो रहा है।

ऐसी बात नहीं कि अंग्रेजी शिक्षा से भौतिक उन्नति नहीं हुई है। यह एक विडम्बना ही है कि जब अंग्रेजी का प्रचार-प्रसार भारत में हुआ तभी रेडियो, घड़ी, रेल आदि भौतिक साधनों का भी आविष्कार हुआ और यह औद्योगिक-भौतिक क्रांति का युग था। इससे पूर्व यूरोप, अमेरिका, एशिया सभी में खुरपी, फावड़ों, हल, घोड़े व बैलों आदि का कृषि में प्रयोग होना था। ऊँट व हाथियों का भी प्रयोग होता था। वही सब साधन पुराने व एक से ही थे। भारतीयों ने समझा कि पाश्चात्य संस्कृति या अंग्रेजी शिक्षा में ही उन्नति संभव है। परन्तु ऐसी बात नहीं है।

यह हमारा भ्रम है। अंग्रेजी ि ाक्षा उन्नति का कारण नहीं क्योंकि चीन, रूस, जापान, फ्रांस, ईरान आदि भी तो वि व में उन्नति ील आधुनिक ज्ञान-विज्ञान से परिपूर्ण दे ा हैं। वहाँ तो अंग्रेजी व किसी दूसरी भाषा को महत्व नहीं दिया जाता है, अपितु उन दे ाों में अपनी ही भाषा प्रमुख है।

भारत में अच्छे इंजीनियरिंग, चिकित्सा व ि ाक्षा के केन्द्र हैं। वहाँ हिन्दी व संस्कृत भाषा को महत्व देना चाहिए। ि ाक्षा हेतु गुरुकुलों का प्रचार व प्रसार हो, वैदिक ि ाक्षा को भी सभी विद्यालयों से जोड़ा जाए क्योंकि यह ि ाक्षा मानवता हेतु है, संसार को श्रेष्ठ बनाने हेतु है, आचरण की ि ाक्षा है।

गुरुकुल ि ाक्षा पद्धति में सभी की उन्नति है। यह भारतीय प्राचीन वैदिक संस्कृति के प्रचार का स्रोत है। हमें यदि वि व में ाान्ति स्थापित करनी है तो वैदिक ि ाक्षा पर ध्यान देना होगा।

गुरुकुल और वैदिक ि ाक्षा पर यदि पूरा ध्यान दिया जाये तो यह निर्ि चत है कि भारत भूमि पर पाप, अत्याचार, अपराध व अन्याय तो नष्ट होंगे ही, भारत को अपना वि ाष्ट स्थान 'प्राचीन गौरव' पुनः प्राप्त हो जाएगा और यदि वि व में ाान्ति की स्थापना करनी है तो वेदों की ओर लौटना ही होगा, जहाँ कोई पक्षपात नहीं, अन्याय नहीं, कोई भेद-भाव नहीं, 'सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः' की भावना है। 'कृण्वन्तो वि वमार्यम्' की संदे ा है।

चन्द्रलोक कालोनी,
खुरजा, उ०प्र०

BRAMARPAN ON WEBSITE

WE ARE HAPPY TO STATE THAT THE ISSUES OF OUR MONTHLY JOURNAL BRAHMARPAN ARE NOW ALSO AVAILABE ON THE WEBSITE **www.thearyasamaj.org** of DELHI ARYA PRATINIDHI SABHA.

Are Upanishads Still Relevant?

-Sneha Kothawade

There is a story in the Brihadaranyaka Upanishad that describes a scene when the gods, humans and demons sought wisdom from the Creator. The Creator asked them all to meditate on the syllable, da. Interestingly, all three groups understood 'da' differently. The gods, blessed with abundance, fond of feasting and always prodigally celebrating, understood the word a Damyata (दमयत) or restraint. They understood that the Creator wanted them to not be so ostentatious and indulgent, but to practise self-restraint.

Humans, typically selfish and avaricious, understood 'da' to mean Datta (दत्त) or donate. They understood that the Creator wants them to give generously and to let go of material possessions.

The demons, naturally brutal and ruthless, thought they had been asked to meditate on this word 'da' because it denoted 'Dayadhvam (दयध्वम्) or mercy–to become more forgiving and curb their barbarism by practising clemency.

To me, this story conveys the relevance of the Upanishads to modern-day society. Of course, the learnings one derives from the Upanishads vary from person to person, depending on their frame of reference, but everyone imbibes that one key message which helps them advance towards the ultimate goal.

So the Upanishads cater to our heterogeneous society, but its knowledge applies to all, whether you are blessed with wealth or struggling to make both ends meet. Everybody can find solace and meaning in these texts–and whether you are deeply contemplative or of a carefree nature, you will find something of value in it. The timeless knowledge of the Upanishads will help you excel and achieve perfection, especially in today's strife-torn and very 'intellectual' world.

Today's age is characterised by science and rational thinking. Information technology has ushered in a new revolution for humanity, and never before has so much knowledge been so widely available as it is today on the internet. People are now using the internet to talk about religion and to show support for causes that need it. People don't want to be submissive and silenced just because it is a matter of religion.

As I learnt more of the Upanishads. I realised they were not sermons from the mount or strict dictums for people to follow. Instead, they encouraged logical and rational thought. Their messages were progressive and readers are encouraged to think for themselves.

One of the main Upanishads is titled as a question, Kena, and loosely translated, it means, 'By whom'. It begins with disciples asking, who enables our life force, and who enables us to think, see and hear. Ask this question and you can confound even a scientific person and convince him of the existence of the superior energy. Scientific thinking has been able to decipher 'how the eyes see' – through our pupil, cornea and retina, but it hasn't been able to decipher 'who sees from the eyes'. Through these series of questions, the Upanishads establish the existence of Brahma or the Supreme Energy that drives the world and our individual selves. This approach of leading the reader towards the answer through questions is a good strategy, especially when it comes to introducing spirituality. The approach is different from the revealing approach of being forced to believe because our older generation says so or because God says so. The Upanishads consider questioning a virtue, and that's in line with the liberal thinking of our present times.

Another aspect is that the Upanishads don't make tall claims of being authoritative, definitive, or sacrosanct–and not too complex for normal mortals. They pleasantly surprised me with their simplicity. Most of the Upanishads are written in an incredibly easy story format, giving me the feeling that I was taking in a Panchtantra or Jataka tale –in other words, they were both entertaining as well as educative.

For example the Katha Upanishad recites the interesting story of Nachiketa who confronts Yama, the God of Death. Yama gives the allegory of the chariot in which the body is the chariot, the Atman, or soul is the chariot's passenger, Buddhi or consciousness is the chariot, driver, and Manas or mind holds the reins, and the Indriyas or the five senses the chariot's horses, and the objects that come across the senses constitute the path of the chariot.

So while reading this story, you automatically begin to imbibe the underlying metaphorical meaning.

Curiously, this chariot allegory has also been mentioned by Plato, and this gives rise to the speculation that the Upanishads had spread far and wide in ancient times and had influenced the ancient world's philosophies.

Cloaking information in the garb of an entertaining story is an important part of storytelling and a feature that has survived into the current age. The word for it today is infotainment! A similar strategy was being adopted many hundreds of years earlier when the Upanishands were being written.

Should we read the Upanishads?
Readers debate this?

Upanishads And Physics

The Upanishads are pure and pristine, and will remain so for ever. The Rishis were the physicists of consciousness and have dealt with the concepts of inner-engineering and the mainfest universe in a very subtle way. The experiments in quantum physics are mere affirmations of what our larned Rishis expounded hundreds of years ago.

Ashok Kumar

Questions About Life

The answer lie all around us, but we keep missing the answers. I have started questioning even religion now and my friends often ask me why I am doing this.

Sapan. aries

Our Rishis Were Intelligent

The analysis done by the Rishis who wrote these books displayed knowledge that had precision and exactness of a very high order –something seen only recently in professional science circles.

Soumya Srajan

A Universal Message

Upanishads contain message for everyone. They are easy to read and also list mantras. You can chant or hum these mantras even as you commute daily to work.

Krishnana Sankaran

A Store house Of Knowledge

The Vedas contain treatises on every issue–they even have a treatise on the comforts of the material world. Once readers have imbibed some basic truths, they can then deal with the truth in other forms and progress towards Vedanta knowledge and then obtain more knowledge and then obtain more knowledge on the Sashtras–this is the path of Jnana Marga.

Kalavathi Sonti

Scriptures Make Our Life Work

It is good that youngsters like you are discovering the brilliance of the Upanishads. Sometimes, quantum physics sounds like a treatise straight out of an Upanishad. We owe what-ever good there is in our present-day world to the Upanishads and to the Vedas and other Scriptures.

Tulsi Bhandari

Da For Dama, Daan, Daya

In the article, ’da’ ideally stands for simpler words like dama, daan and daya or control of mind, charity and mercy. These are words that everyone understands.

Madhav Wariyar

Krishna Speaks On Knowledge and Action

-G.S. Tripathi

The second chapter of the Bhagwad Gita is a primary source of eternal knowledge. Bewildered by the challenges before him, Arjuna seeks Krishna's intervention in removing his ignorance and leading him on the path of righteousness. In response, Krishna talks about the immortality of soul, knowledge of eternity and the transient, supremacy of action bereft of desire for its fruits and the necessity of being equipoised under the spell of dualities of life.

Just as a body experiences different stages of life such as childhood, youthfulness and old age, death is also an inevitable process. However, with decay of body, the soul is not affected. For those who are born, death is inevitable. Similarly for those who die, birth, too, is inevitable. However the later is incomprehensible. Ordinarily we do not know what happens after death. It is basically a belief. However, it is strong belief and our own philosophy is built around it. Let me try a scientific simile.

Electronic is an outgrowth of semiconductors which are ordinarily understood through a combination of chemistry and quantum theory. In the ground state, a semiconductor is described simply by two bands. The lower valence band is completely filled with electrons and the upper conduction band, separated by a small energy gap from the valence band, is empty. A semiconductor can be excited by various means such as heat or light energy or even by impurities. When an electron is excited from the valence band to the conduction band, it is considered as annihilated in the former and created in the later. Thus something which decays reappears again elsewhere. Its nature, too, changes, The electron was localised or confined earlier, but after excitation it is free.

In the same chapter, Krishna talks about senses and sense objects. The quality of a person is ascertained from the response of his senses to sense objects. If the response is negative, the his senses are under control and the person is said to be in a state of equipoise. If the senses are affected by sense objects, then the person loses control over himself and his

conscience is lost. A person with a lost conscience can harm himself and his fellowmen.

Conscience never lets us down, provided it is guarded against attackers-lust, anger and greed. If conscience wins we are happy and blissful. If, however, the attackers win, we lose control over ourselves and fall from the blissful state. It always keeps one ordered. If we do not listen to the voice of our conscience, all order is lost in us and we are vulnerable to attack by its destroyers.

It is indeed true that no one has complete control over the three vices, which, according to the Gita, can lead one to hell-like situations. Conscience is a kind of internal force that results from values acquired from education, adherence to moral and spiritual practice in thought and action, strength of mind, fearlessness, freedom and truthfulness.

Many of the wrong doings would not have happened if we listened to our conscience. If the conscience is weakened by aforesaid enemies, then we lose order and become devilish. We commit crimes and, as a consequence, are lost to the mercy of circumstances. The Gita teaches us how to overcome the three vices and establish supremacy of conscience. Although it is hard to attain completely, sincere effort could lead us from sorrow to bliss.

- Nobody who ever gave his best regretted it.
- Laziness may appear attractive, but work gives satisfaction.
- As soon as you trust yourself, you will know how to live.
- From error too error one discovers the entire truth.
- They think to little who talk too much.
- Freedom is nothing else but a change to be better.
- The man who forgives is far stronger than the man who fights.
- The greatness is not in what we do but how we do.
- Kindness is the golden chain by which people are bound together.
- Real education is that which enables one to be self-reliant.

BRAHMASHA INDIA VEDIC RESEARCH FOUNDATION ACKNOWLEDGES WITH THANKS RECEIPT OF THE DONATION OF Rs.500/- FROM SHRI S.C. Sud, C2C/229C, Janakpuri. Donations to the Foundation are eligible for Tax Exemption under Section 80G of the Income Tax Act 1960 Vide No.DIT(E)1/3313/DELBE 21670-2503210 dated 25.03.2010

Date of Pubn. : 31.07.2014 Posted at - NIE - H.O. Postal Date : 2-3 Aug.2014
RNI Reg. No. DELBIL/2007/22062 Postal Regd. No. DL(W) 10/2143/2014-2016

भद्रं कर्णेभिः ाणुयाम देवा भद्रं प येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवां सस्तनूभिर्व्य ोमहि देवहितं यदायुः।।

(यजु. 25/21)

ऋषि– गोतमः, देवता–विद्वांसः, छन्द – त्रिष्टुप्

हे प्रभो! एवं विद्वानो! हम कानों से हमे ाा कल्याणकारी उपदे ा सुनें। हे ई वर! एवं याजक विद्वज्जनो! आँखों से सदा कल्याणकारी द य ही देखें। हे जगदी वर! हमारे सब अंग, उपांग (श्रोत्रादि इन्द्रियाँ और सेना आदि उपांग) सदा स्थिर (दढ़) रहें जिससे हम सदा स्थिर रह कर आपकी स्तुति और आज्ञा का पालन करते रहें ताकि हम आत्मा, ारीर और इन्द्रियों और विद्वानों की हितकारी आयु को ठीक तरह प्राप्त करें और सदैव सुखी रहें।

Oh Almighty God, may we always hear with our ears only what is auspicious and never come to know anything which is inauspicious in this world. Oh God, You are the Performer of the great 'Yajna', May we by your grace, always see with our eyes only what is pleasant. Oh God, may we always be able to work for Your adoration and observance of Your commandments with our sense organs and other parts of our bodies ever stable and strong. Oh Lord, grant us our full span of life. Oh Lord, keep us always happy, healthy, wealthy and wise.

Printed by - Friendsprintofast, New Delhi-58